1

वैदिक कालीन अर्थव्यवस्था

डॉ. लज्जा भट्ट
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

वेद हमारे गौरव ग्रन्थ हैं। वेद तथा वेदाङ्ग अपने समाहित ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य का दिशा–निर्देशन करते हैं, क्योंकि वैदिक साहित्य में जो आचार–विचार तथा संस्कार निहित हैं, वे सब ज्ञान–विज्ञान के भण्डार हैं। वेद के मन्त्रों में प्राचीन वैदिक युग के समाज की झाँकी मिलती है। वैदिक समाज में अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित चिंतन प्रस्तुत शोध–पत्र में करने का प्रयास किया जा रहा है।

'अर्थ' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक धारणायें प्रचलित हैं, अर्थ शब्द 'ऋ' धातु से बना है, जो गति अर्थान्वय है। प्राप्तव्य स्थान (Destination) है। यास्क प्रणीत 'निरुक्त' तथा 'निघण्टु' में 'अर्' धातु से अर्थ शब्द की व्युत्पत्ति बतायी गई है। ऋग्वेद के 'अर्थिनो यान्ति चेदर्थम्' तथा 'अर्थमिद्धा उउर्थिम्' इन दोनों मन्त्रों में धन के अर्थ में 'अर्थ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहाँ विषय के अनुसार अर्थ का तात्पर्य है– धन, ऐश्वर्य, दौलत, सम्पत्ति, रुपया, अभीष्ट साधन, जीवन के चार पुरुषार्थों में से एक।

वेदों का यह सन्देश रहा है कि अर्थनीति को अध्यात्म की भित्ति पर प्रतिष्ठित करना चाहिए। धन का उपार्जन न्यायपूर्वक एवं धर्मानुसार ही होना चाहिए। धनार्जन में स्वयं का भला हो तथा अन्य लोगों का भी भला हो। चोरी, डकैती, छल–कपट, हिंसा, अन्याय आदि से प्राप्त धन वर्जित धन है, ऐसा वर्जित धन ही मनुष्य के विनाश का कारण होता है। (ऋग्वेद 5/39/2), वेदों में पतन, विनाश तथा वरेण्य धन की संकल्पना स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

'पतन, विनाश धन की अपेक्षा वरेण्य धन, तेजस्वी धन की प्राप्ति हो ।(ऋग्. 5/39/5)

इस विषय में अग्निदेव से प्रार्थना की गई है–

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वपुनानि विद्वान्।

युयोध्यस्मत्, जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधमे।।[1]

©Indira Gandhi National Open University

अर्थात् हे अग्नि देवता! हमें सन्मार्ग से ही सम्पदा की ओर अग्रसर करें, जिससे हमसे कुटिलता, पाप दूर ही रहें।

वैदिक युग में आर्थिक अवस्था अत्यन्त सुविकसित प्रतीत होती है। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को सुचारु गति देने के लिए उस देश की कृषि तथा खनिज सम्पदा का विशेष महत्त्व होता है। अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त में पृथिवी का गौरवगान जिस रूप में ऋषि ने किया है उससे यह सिद्ध है कि तत्कालीन समाज में आर्थिक दृष्टि से पृथिवी के प्रति पूर्ण जागरूकता विद्यमान थी। वहाँ हिरण्यगर्भवती पृथिवी को सभी प्रकार के धनों की दात्री कहा है–

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।

वैश्वानरं विभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु।।[2]

वेद के अनुसार यह भूमि ही सबकी पोषक है–

'विश्वं भूमेव पुष्यति (ऋ. 8/39/7)

वैदिक आर्यों के कृषि–प्रेम के अनेक उदाहरण वेदों में देखने को मिलते हैं। वैदिक कवियों ने **'खेती करो'– कृषिमित् कृषस्व (ऋ.10/34/13)**, यह अभियान चलाकर समाज को कृषि की ओर प्रेरित किया।

वेदों में कृषिकर्म तथा उसके उपकृत्यों का वर्णन स्थान–स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। वर्षा, कृषि का आधार है जिसके अधिष्ठाता इन्द्र देव हैं। कृषि कार्य कैसे करना चाहिए इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है–

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।

गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्ननो नेदीयइत सृण्यः पक्वमेयात्।[3]

कृषि कर्म को ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला बताया गया है। एक अन्य स्थान पर द्यूतक्रीड़ा का निषेध करके कृषि कर्म करने तथा ऐश्वर्यशाली बनने का निर्देश दिया गया है–

'अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व[4] ।

हल के लिए सीर तथा लाङ्गल, किसान के लिए 'कीनाश' तथा हल चलाने से बनी रेखा के लिए 'सीता' शब्दों का प्रयोग वेदों में किया गया है। अथर्ववेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक युग में पशु–पुरीषजन्य खाद के महत्त्व की जानकारी थी।[5]

गोष्ठ सम्बन्धी एक पूर्ण सूक्त (3/14) में गौओं के गोष्ठ में सुरक्षित रहने, चरकर सुरक्षित लौटने तथा उनकी अभिवृद्धि की प्रार्थना की गई है–

इहैव गाव एतनेहो, शकेव पुष्यत।

इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानवस्तु वः।।[6]

©Indira Gandhi National Open University

अथर्ववेद के द्वितीय अध्याय का छब्बीसवाँ सूक्त गौओं तथा दूध की समृद्धि से सम्बद्ध है (2/26) । फसल काटने का उपकरण 'दात्र' अथवा 'श्रृणी' (हँसिया) होता था। सिंचाई के लिए कुओं तथा नहरों पर निर्भर रहना पड़ता था। ऐसे कुएँ, जिनमें पानी कभी कम नहीं होता था, उनसे पानी निकाल प्रणालियों द्वारा खेतों में पहुँचाया जाता था। ऋग्वेद में 'खनित्रिमा आपः' (खोदकर निकाला हुआ पानी) शब्द से नहरों का बोध होता है।

वैदिक काल में पशुपालन एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय था। उसे ही प्रधान धन समझा जाता था। पालतू पशुओं की श्रेणी में गौ के साथ ही भैंसें, घोड़े, भेड़ें तथा बकरियाँ भी सम्मिलित थीं। वैदिक काल में पशुपालन का आधार वैयक्तिक ही नहीं अपितु व्यावसायिक भी था। इसलिए 'यजुर्वेद' में विभिन्न व्यवसायों के मध्य गोपालों, अजपालों तथा अविपालों (भेड़पालक) का भी उल्लेख है।[7]

भेड़पालन तथा उनके रोओं से विभिन्न ऊनी वस्त्रों का निर्माण वैदिक आर्यों का मुख्य व्यवसाय था। भेड़ें उस युग के जन-जीवन के लिए इतनी उपयोगी तथा लाभदायक थीं कि ऋग्वेद की (8/86/12) ऋचा में (मन्त्र) इन्द्र को भेड़ों के समान उपकारी कहा गया है। ऋग्वेद (4/22/2), शतपथब्राह्मण (12/5/1/13) तथा वाजसनेयी संहिता (13/50) में ऊर्ण (ऊन) का उल्लेख अनेक बार हुआ है। ऊन के लिए परुष्णी देश (गान्धार) की भेड़े अधिक प्रसिद्ध बताई गई हैं।

वैदिक काल में अनेक प्रकार के उद्योग तथा शिल्प प्रचलित थे। इनमें वाय (कपड़ा बुनने वाले), त्वष्टा अथवा तक्षा (बढ़ई), कर्मार (लुहार), कुम्हार, माला बनाने वाले, चमड़ा पकाने वाले, नाई, वैद्य, स्वर्णकार आदि प्रमुख हैं। यजुर्वेद में रथकार, तक्षा, कर्मार, मणिकार, इषुकार, धनुष्कार, रज्जुसर्प, हस्तिप, अश्वप, सुराकार, वणिक्, हिरण्यकार आदि शिल्पियों का उल्लेख है।[8]

वैदिक काल में दो प्रकार के व्यापार होते थे - आन्तरिक तथा बाह्य।

आन्तरिक आर्यों के देश के भीतर होता था, जिसमें अनाज तथा अन्य वस्तुएँ देश के विभिन्न भागों में पहुँचाई जाती थी। वाह्य व्यापार विदेशों के साथ नौकाओं तथा जलयानों के माध्यम से होता था। वेदों में समुद्र में चलने वाली नौकाओं का उल्लेख मिलता है। एक स्थान पर सौ अरित्र वाली नौका का भी उल्लेख है। (ऋग्वेद 1/35/7, 1/116/5), यह नौका सम्भवतः आज के समुद्री जहाज का ही प्रतिरूप हो सकती है।[9]

तत्कालीन समाज में व्यापार हेतु बड़े-बड़े बाज़ार थे जहाँ पर विविध प्रकार के उद्योग-धन्धे चलते थे। अथर्ववेद में बड़े बाज़ारों को 'प्रपण' कहा गया है-

'येन धनेन प्रपणं चरामि' (अथर्व. 3/15/5)

वैदिक अर्थव्यवस्था में उद्योग को वाणिज्य (commerce) के अन्तर्गत रखा गया है। धन की वृद्धि वाणिज्य द्वारा ही सम्भव है। समाज की उन्नति के लिए समाज उद्योगी हो। ऐसा उद्योग व्यापार हो जो धन की वृद्धि कर सके। ऐसे ही उद्योग व्यापार में मन को लगाने का उपदेश वेद देते हैं। (अथर्व. 3/15/6) वाणिज्य सम्बन्धी सूक्त में (अथर्व. 3/15)

©Indira Gandhi National Open University

धन की वृद्धि, धन के द्वारा वस्तुओं के क्रय-विक्रय, व्यापार के लिए दूर-दूर के स्थानों पर आवागमन तथा मार्गों की बाधाओं का उल्लेख है-

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम्।

शुनं नौ अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु।।[10]

ऋग्वेद (1/26/7, 2/3/6, 4/16/7, 7/34/11), वाजसनेयि संहिता[11] (19/82/89, 20/4) आदि में 'पेशस्' शब्द से कढ़े हुए वस्त्रों का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार के कढ़े हुए वस्त्रों को विशेष रूप से नर्तकियाँ पहनती थीं (ऋग्वेद 1/92/4-5), यजुर्वेद (वाजसनेयी 30/9) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (3/4/5/1) में उल्लिखित 'पेशकारी' शब्द से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के कढ़े हुए वस्त्रों का निर्माण स्त्रियों का नियमित व्यवसाय हुआ करता था। वैदिक युग में सम्भवतः ऊनी, सूती तथा रेशमी तीनों प्रकार के वस्त्रों का उत्पादन होता था तथा उन्हें धारण किया जाता था।

ऋग्वेद[12] (1/34/1), तैत्तिरीय संहिता[13] (6/1/9/7), वाजसनेयी संहिता (2/32) तथा ऐतरेय ब्राह्मण[14] (1/3) आदि में सभी प्रकार के वस्त्रों के लिए सामान्यतः 'वासस' शब्द का प्रयोग हुआ है।

कढ़ाई, बुनाई के अतिरिक्त सिलाई की कला से भी वैदिक आर्य सुपरिचित थे। वेदों में सूई के लिए 'सूची' अथवा 'वेशी' नामों का उल्लेख हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है कि वे (सूईं) लोहे, चाँदी अथवा सोने की हुआ करती थीं। इससे प्रतीत होता है कि कपड़ों की सिलाई तथा कढ़ाई के लिए तब भी सूई का उपयोग किया जाता था।

वस्त्र बुनना प्रायः स्त्रियों का कार्य था, जिसका उल्लेख अथर्ववेद (10/7/42) तथा ऋग्वेद (1/92/9) में देखने को मिलता है। 'शतपथ ब्राह्मण' (12/7/ 2/11) में भी ऊन तथा सूत कातना स्त्रियों का मुख्य कार्य बताया गया है-

'तद्यथा एतत्स्त्रीणां कर्म यदूर्णासूत्रम्।

वे चरखा चलातीं तथा विविध प्रकार के सूती-ऊनी वस्त्रों को बुनती थीं। इस प्रकार वैदिककालीन समाज अत्यन्त समृद्ध तथा सम्पन्न अर्थव्यवस्था से युक्त था। त्यागपूर्ण अर्थोपार्जन की भावना विद्यमान थी-

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम्' अर्थात् हम किसी अन्य के धन की कामना न करें, यह भाव तत्कालीन समाज में व्याप्त था ।

सन्दर्भ-

1.ऋग्वेद 1/81/1

©Indira Gandhi National Open University

2.अथर्व.12/1/6

3.ऋग्वेद 10/101/3

4.ऋग्वेद 10/34/3

5.अथर्व. 3/14/3-4, 19/31/3

6.अथर्व. 3/14/4

7.यजुर्वेद 30/12

8.यजुर्वेद 30/6,7,11,17,20

9.ऋग्वेद 1/25/7

10.अर्थव. 3/15/4

11.वाजसनेयि संहिता 19/82/89, 20/4

12. ऋग्वेद 1/34/1

13. तैत्तिरीय संहिता 6/1/9/7

14. ऐतरेय ब्राह्मण 1/3

Volume 4, Issue 1, 2025, p. 1-5, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University